

दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

निर्णय सुरक्षित: 18.02.2025

निर्णय उद्घोषित 21.02.2025

नि.प्र.अ. 385/2023, सि.वि.आ. 53522/2023 और सि.वि.आ. 24953/2023

RFA 385/2023, CM APPL. 53522/2023 & CM APPL. 24953/2023

सीमा जस्सल

.....अपीलार्थी

द्वारा: श्री विनय राठी, अधिवक्ता, अपीलार्थी के साथ स्वयं उपस्थित।"

बनाम

मनोज बाजपेयी

.....प्रत्यर्थी

द्वारा: सुश्री गीता लूथरा, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री अनुज सिंह, अधिवक्ता और प्रत्यर्थी स्वयं

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री गिरीश कठपालिया

निर्णय

न्या. गिरीश कठपालिया

1. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के साथ पठित आदेश XLI के तहत दायर की गई यह अपील, फ्लैट संख्या 97A, एलआईजी भूतल, पॉकेट A-3, कोंडली, घरोली, मयूर विहार, फेज-III, दिल्ली (जिसे आगे "विषयगत संपत्ति" कहा गया है) के कब्जे की वसूली के लिए प्रारंभिक निर्णय और डिक्री को चुनौती देती है। आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपीलार्थी की स्वीकारोक्तियों के आधार पर आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के तहत लिखी गई थी। इस अपील के नोटिस की तामील पर, प्रत्यर्थी अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ। दोनों पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर, मैंने अंतिम दलीलें सुनीं और संबंधित अभिलेख की जांच की।

2. वर्तमान अपील के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों का विवरण आगे दिया गया है।

2.1 वर्तमान प्रत्यर्थी ने स्वयं को विषयगत संपत्ति का पूर्ण स्वामी एवं कब्जाधारी बताते हुए, अपीलार्थी के विरुद्ध अनिवार्य निषेधाज्ञा/कब्जा, *अंतःकालीन लाभ* तथा हर्जाने हेतु वाद दायर किया। प्रत्यर्थी ने अपने वादपत्र में निम्नलिखित दलील दी। चिकित्सक होने के नाते, वह वर्ष 1996 से विषयगत संपत्ति से अपना क्लिनिक चला रहा था। अपीलार्थी, लगभग 50 वर्ष आयु की, विवाहित एवं दो बच्चों की माता, वर्ष 2006 में अपनी माता के उपचार हेतु उसके नोएडा क्लिनिक पर गई। कुछ माह पश्चात वह पुनः नोएडा क्लिनिक गई और नौकरी का अनुरोध किया, जिस पर प्रारंभिक संकोच के बाद उसने सहमति

दी और उसे नोएडा क्लिनिक में नर्सिंग सहायक नियुक्त किया। वर्ष 2012 के प्रारंभ में अपीलार्थी ने क्लिनिक के रोगियों एवं स्टाफ के साथ दुर्व्यवहार करना प्रारंभ किया तथा नशीले पदार्थों (ड्रग्स) का सेवन भी करने लगी, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी ने मार्च 2012 में ही उसकी सेवाएँ समाप्त कर दीं और वह अपने परिवार के साथ रहने हेतु चंडीगढ़ चली गई। इस बीच, वर्ष 2011 के प्रारंभ में यकृत सिरोसिस से पीड़ित पाए जाने पर, स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण प्रत्यर्थी को मई 2012 में अपना क्लिनिक बंद करना पड़ा। जून 2012 में अपीलार्थी पुनः प्रत्यर्थी के पास आई और यह कहते हुए 2-3 दिन के लिए आवास की अनुमति माँगी कि उसे अपने परिवार एवं अन्य संबंधियों के साथ कुछ विवाद निपटाने हैं। चूँकि विषयगत संपत्ति रिक्त पड़ी थी, प्रत्यर्थी ने इंसानियत के नाते उसे कुछ दिनों के लिए वहाँ रहने की अनुमति दे दी। परंतु तत्पश्चात उसने जारी पारिवारिक विवादों का बहाना बनाकर संपत्ति खाली नहीं की। अगस्त 2012 में, बीमारी से आंशिक रूप से ठीक होने के बाद, उन्होंने विषयगत संपत्ति से अपना क्लिनिक शुरू करने का इरादा किया, लेकिन उन्हें पता चला कि अपीलार्थी संपत्ति खाली करने का इरादा नहीं रखती है और ताले बदलने के बाद, उसने खुद को एमबीबीएस डॉक्टर बताकर अवैध रूप से अपना क्लिनिक चलाना शुरू कर दिया था। अगस्त 2012 में, जब वह विषयगत संपत्ति पर गए और अपीलार्थी से उसे खाली करने के लिए कहा, तो उसने इनकार कर दिया और उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। इन

परिस्थितियों में उन्होंने 02.09. 2012 को एक समाचार पत्र में एक सामान्य सूचना प्रकाशित करवाई और पूर्वी दिल्ली के सीडीएमओ को भी सूचित किया, जिसके बाद उन्हें अपीलार्थी और उसके सहयोगियों से धमकियां मिलने लगीं, जिन्होंने विषयगत संपत्ति खाली करने के लिए पैसे की मांग की, इसलिए उन्होंने 29.05. 2012 को स्थानीय पुलिस में शिकायत दर्ज कराई लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई। जब उसने उसे पैसे देने से इनकार कर दिया, तो बदले की भावना से अपीलार्थी ने पुलिस स्टेशन अशोक नगर में प्राथमिकी संख्या 19 दिनांक 17.01.2013 के माध्यम से धारा 376 भा.दं.सं. के तहत अपराध का झूठा मामला दर्ज कराया, जिसमें उसे गिरफ्तार किया गया और छह दिन की न्यायिक हिरासत के बाद उसे जमानत दे दी गई। उक्त संपत्ति पर अनाधिकृत कब्जेदार होने के कारण, अपीलार्थी को बेदखल किया जा सकता है और वह वादपत्र में निर्धारित क्षतिपूर्ति के अलावा *अंतःकालीन* लाभ का भुगतान करने के लिए भी उत्तरदायी है।

2.2 अपीलार्थी ने अपने लिखित बयान के ज़रिए वादपत्र का विरोध किया, जिसमें उसने शिकायत की बातों से इनकार किया और इस तरह से दलीलें दीं। मौजूदा प्रत्यर्थी ने उसे ड्रग्स का इंजेक्शन लगाकर उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए और झूठे वादे करके उसकी इज़्जत को तार-तार करता रहा। वह एक शादीशुदा महिला है, हालांकि वह पिछले करीब 16-17 सालों से अपने पति और ससुराल वालों से अलग नोएडा में अपने माता-पिता के घर में अपने बच्चों के

साथ रह रही है। अपनी मां के एक किडनी फेल होने के इलाज के लिए, वह नोएडा के ईएसआई (ESI) अस्पताल जाती थी। दिसंबर 2006 में वह प्रत्यर्थी से उसके क्लिनिक में मिली, जहां वह अपनी मां का अल्ट्रासाउंड करवाने गई थी और शाम को मेडिकल रिपोर्ट लेते समय, प्रत्यर्थी ने बताया कि उसकी मां की हालत गंभीर है, इसलिए कुछ और टेस्ट के लिए उन्हें अगले दिन आना होगा। पहली ही मुलाकात में, प्रत्यर्थी ने उससे दोस्ती कर ली और अक्सर उसके घर आने लगा। एक दिन उसके घर पर, प्रत्यर्थी ने उसके चेहरे के लकवे के बारे में बात की और बताया कि इसका इलाज हो सकता है, और इसके लिए वह उसे कोंडली में अपने दोस्त के क्लिनिक में सीटीस्कैन (CT Scan) के लिए ले गया, जिसके बाद उसने उसकी मां से कहा कि उसे एक न्यूरोलॉजिस्ट को दिखाना पड़ेगा है और उसे डॉ. ज्योति खन्ना के घर ले गया। इसके बाद, प्रत्यर्थी ने चिकित्सा उपचार के बहाने उसे नोएडा स्थित अपने क्लिनिक में रखा और नसों में इंजेक्शन लगाना शुरू कर दिया। रात लगभग 10:00 बजे (तारीख नहीं बताई गई), जब वह आधी बेहोशी की हालत में थी, तो उसने देखा कि प्रत्यर्थी बहुत ज़्यादा शराब के नशे में उसके कमरे में बैठा था और रात 2:00 बजे उसने उसे एक इंजेक्शन दिया जिससे वह बेहोश हो गई और कुछ देर बाद उसने खुद को उसके द्वारा यौन शोषण का शिकार पाया। 09.04.2011 को, वह अपने बेटे के साथ अपने ससुराल गई, लेकिन प्रत्यर्थी उसे फ़ोन करने लगा और मैसेज भेजने लगा, और अगर वह वापस नहीं आई तो उसके पति और बच्चों

को सब कुछ बता देने की धमकी देने लगा। प्रत्यर्थी ने यह भी वादा किया कि अगर वह वापस आ जाएगी तो वह उससे शादी कर लेगा क्योंकि उसने पहले ही अपनी पत्नी के खिलाफ तलाक की कार्यवाही शुरू कर दी थी। प्रत्यर्थी की बहन भी उसे फ़ोन करके वापस आने के लिए दबाव डालती थी। इतने ज़्यादा दबाव में और प्रत्यर्थी के आश्वासन पर, उसने अपनी ज़िंदगी नए सिरे से शुरू करने और प्रत्यर्थी के साथ रहने का फैसला किया, इसलिए वह 22.06.2011 को नोएडा लौट आई। इसके बाद, प्रत्यर्थी उसे उस प्रॉपर्टी पर ले गया और उसे अलमारी, बिस्तर और किचन के सामान सहित बेसिक सुविधाएं दीं ताकि वह वहाँ रह सके। कुछ समय बाद, प्रत्यर्थी ने उसके फ़ोन कॉल उठाना बंद कर दिया और उसके लिवर की बीमारी के लिए उसके (अपीलार्थी) द्वारा की गई पूरी देखभाल के बावजूद उससे झगड़ा करना शुरू कर दिया। प्रत्यर्थी ने इलाज करने वाले डॉक्टर के सामने भी उसे अपनी पत्नी के रूप में पेश किया, लेकिन बीमारी से ठीक होने के बाद, उसने उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया और उस पर विषयगत संपत्ति छोड़ने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया। 15.07.2012 के बाद, उसने उससे मिलना बंद कर दिया। प्रत्यर्थी उसे मादक पदार्थ का इंजेक्शन लगाकर बलात्कार करता था और उसकी अश्लील तस्वीरें और वीडियो भी लेता था, जिनका इस्तेमाल करके वह उसे ब्लैकमेल करने लगा। 14.01.2013 को प्रत्यर्थी ने उससे कहा कि वह उसे छोड़कर चली जाए और बदले में वह उसकी सभी तस्वीरें, नेगेटिव और उसके अश्लील वीडियो वाले

सिम कार्ड उसे सौंप देगा। 17.01.2013 को प्रत्यर्थी के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई थी, लेकिन छह दिन बाद उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया। इन परिस्थितियों में, यह वाद खारिज किया जाना चाहिए।

2.3 इसी बीच, अपीलार्थी की शिकायत पर पुलिस स्टेशन अशोक नगर ने प्रत्यर्थी के खिलाफ प्राथमिकी संख्या 245/2013 के तहत धारा 195क/323/506 भा.दं.सं. के तहत एक और मामला दर्ज किया। उस चरण में, पक्षकारगण एक समझौते पर पहुँचे और तदनुसार उनके बीच दिनांक 07.10.2013 को एक नोटरीकृत समझौता ज्ञापन (एमओयू) निष्पादित किया गया। उक्त समझौता ज्ञापन में, पक्षकारगण ने यह दर्ज किया कि वर्तमान प्रत्यर्थी विषयगत संपत्ति का पूर्ण स्वामी है और उसने डीडीए द्वारा पट्टे से मुक्त स्वामित्व में परिवर्तित होने के बाद विषयगत संपत्ति के आधे हिस्से के संबंध में वर्तमान अपीलार्थी के पक्ष में एक उपहार विलेख निष्पादित करने और पंजीकृत कराने पर सहमति व्यक्त की है, जिसके लिए वह एक महीने के भीतर आवश्यक आवेदन प्रस्तुत करेगा और विषयगत संपत्ति का शेष आधा हिस्सा उसके स्वामित्व और कब्जे में रहेगा; प्रत्यर्थी अपीलार्थी को उसके जीवनकाल के दौरान प्रति माह 11000 रुपये का भुगतान करेगा और अपीलार्थी उक्त प्राथमिकी को आगे नहीं बढ़ाएगी जबकि प्रत्यर्थी सिविल वाद नहीं चलाएगा; अपीलार्थी उक्त दो प्राथमिकी के संबंध में जांच अधिकारी और न्यायालयों के समक्ष एक आवेदन/बयान/शपथ पत्र दाखिल करेगी, जिसमें वह इन मामलों को आगे न बढ़ाने के अपने निर्णय की पुष्टि

करेगी; और अपीलार्थी प्रत्यर्थी को दी गई जमानत रद्द करने के लिए अपना आवेदन वापस ले लेगी और वह उच्च न्यायालय के माध्यम से उक्त प्राथमिकी को रद्द करने के लिए उचित कार्यवाही भी दायर करेगी।

2.4 उक्त समझौता ज्ञापन के अनुसार, प्रत्यर्थी ने माननीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के दिनांक 05.12.2013 के आदेश द्वारा अपना वाद वापस ले लिया। लेकिन बाद में, प्रत्यर्थी ने 27.05.2016 को एक आवेदन दायर किया, जिसमें इस आधार पर वाद को फिर शुरू करने की मांग की गई कि उक्त समझौता ज्ञापन पर अपीलार्थी द्वारा कभी भी कार्रवाई नहीं की गई और उसका अनुपालन नहीं किया गया। आवेदन में कहा गया था कि अपीलार्थी ने विषयगत संपत्ति का शेष आधा हिस्सा उसे नहीं सौंपा, बल्कि शेष आधे हिस्से पर कब्जा लेने के उसके प्रयासों का विरोध किया; कि उसने उसके खिलाफ घरेलू सामान की चोरी का आरोप लगाते हुए दिनांक 12.07.2014 को एक झूठी शिकायत दर्ज कराई; कि धारा 376 भा.दं.सं. के तहत प्राथमिकी संख्या 19/2013 को रद्द करने के लिए उसके द्वारा दायर रिट याचिका का उसके अधिवक्ता के माध्यम से उसने (अपीलार्थी) पुरजोर विरोध किया, जबकि धारा 195क/323/506 भा.दं.सं. के तहत दूसरी प्राथमिकी को यह कहते हुए बंद कर दिया गया कि अपीलार्थी के आरोप झूठे थे; कि 17.01.2015 को अपीलार्थी ने पुलिस स्टेशन अशोक नगर में प्राथमिकी संख्या 101/2015 के माध्यम से धारा 195क भा.दं.सं. के तहत अपराध के लिए एक और झूठा मामला दर्ज कराया,

जिसमें उसे अग्रिम जमानत दी गई थी। अंततः, धारा 376 भा.दं.सं. के तहत प्राथमिकी संख्या 19/2013 को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर रद्द कर दिया गया था; और इन परिस्थितियों से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी समझौता ज्ञापन की शर्तों का पालन नहीं करना चाहती थी, इसलिए वाद को फिर से शुरू किया जाना उचित था। दोनों पक्षकारगण की बात सुनने के बाद, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने दिनांक 25.04.2018 के आदेश द्वारा वाद को फिर से शुरू कर दिया। जाहिर तौर पर, दिनांक 25.04.2018 के आदेश को किसी भी पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी।

2.5 प्रतिद्वंद्वी दलीलों और परिस्थितियों की उपरोक्त पृष्ठभूमि में, विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के तहत प्रत्यर्थी के आवेदन को स्वीकार कर लिया और अपीलार्थी के खिलाफ कब्जे की वसूली के लिए वादको आंशिक रूप से डिक्री कर दिया, और *अंतःकालीन* लाभ की गणना के संबंध में आगे की कार्यवाही के लिए वाद को स्थगित कर दिया।

3. इसलिए, वर्तमान अपील की गई है।

4. बहस के दौरान, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री कानून की दृष्टि से मान्य नहीं हैं, क्योंकि समझौता ज्ञापन के खंड 4 के अनुसार, वर्तमान प्रत्यर्थी का यह कर्तव्य है कि वह विषयगत संपत्ति का आधा हिस्सा अपीलार्थी के नाम पर हस्तांतरित करे, और

ऐसा न होने के कारण, उसे विषयगत संपत्ति से बेदखल नहीं किया जा सकता। अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के तहत डिक्री विवेकाधिकार का मामला है, जिसका प्रयोग प्रत्यर्थी के पक्ष में नहीं किया जाना चाहिए था, क्योंकि पक्षकारगण के बीच विवाह विचारण का विषय है और अपीलार्थी ने यह स्वीकार किया है कि उसका विवाह प्रत्यर्थी से हुआ था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि विचारण न्यायालय उच्च न्यायालय के उस आदेश से प्रभावित हुआ, जिसके तहत बलात्कार की प्राथमिकी रद्द कर दी गई थी। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह एक उपयुक्त मामला था जिसमें विचारण न्यायालय को पूर्ण सुनवाई करनी चाहिए थी।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और मुझे पूरा अभिलेख दिखाया। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि यह माना गया है कि दोनों पक्ष पहले से शादीशुदा थे, इसलिए सिर्फ इसलिए कि उनके बीच सहमति से शारीरिक संबंध थे, उनके बीच शादी नहीं मानी जा सकती। जहां तक समझौता ज्ञापन की बात है, यह तर्क दिया गया कि अपीलार्थी ने खुद कभी उस पर अमल नहीं किया, इसलिए वह उसके तहत कोई फायदा नहीं उठा सकती। प्रत्यर्थी की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि यह माना गया है कि किसी भी विधिक रूप से स्टैम्पड और रजिस्टर्ड दस्तावेज़ की गैर-मौजूदगी में, अपीलार्थी का कब्ज़ा अनुमति वाले उपयोगकर्ता के तौर पर ही

बना हुआ है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने मुझे दलील की पैराग्राफवार सामग्री से भी अवगत कराया ताकि यह दिखाया जा सके कि अपीलार्थी ने प्रासंगिक तथ्यों को स्वीकार किया है।

6. त्वरित संदर्भ के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XII नियम 6 के अंतर्गत प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

“6. स्वीकृतियों पर निर्णय (1) जहां अभिवचन में या अन्यथा, चाहे मौखिक रूप से या लिखित रूप में तथ्य की स्वीकृतियों की जा चुकी हैं वहां न्यायालय वाद के किसी प्रक्रम में या तो किसी पक्षकार के आवेदन पर या स्वप्रेरणा से और पक्षकारों के बीच किसी अन्य प्रश्न के अवधारण की प्रतीक्षा किए बिना ऐसी स्वीकृतियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा आदेश या ऐसा निर्णय कर सकेगा जो वह ठीक समझे।

(2) जब कभी उपनियम (1) के अधीन निर्णय सुनाया जाता है तब निर्णय के अनुसार डिक्री तैयार की जाएगी और डिक्री में वही तारीख दी जाएगी जिस तारीख को उक्त निर्णय सुनाया गया था ।।”

6.1 कोई भी कानून किसी भी वादी से यह अपेक्षा नहीं करता कि वह उन मुकदमों और विधिक प्रक्रियाओं की लंबी और जटिल प्रक्रिया से गुजरे जहां प्रासंगिक पहलुओं पर कोई विवाद न हो। जहां प्रतिवादी वादी के दावे का पूर्ण या आंशिक रूप से खंडन नहीं करता है, वहां वादी को पूर्ण विधिक कार्यवाही से गुजारना न्याय व्यवस्था के लिए प्रतिकूल होगा। जहां प्रतिवादी वादी द्वारा उठाए गए दावे के पूरे या आंशिक हिस्से को स्वीकार करता है, वहां न्यायालय

के लिए वादी के दावे को स्वीकारोक्ति की सीमा तक स्वीकार करना उचित और तर्कसंगत होगा। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XII नियम 6 के तहत प्रावधान इसलिए बनाए गए थे ताकि विवाद न होने की स्थिति में पक्षकारगण को शीघ्र निर्णय मिल सके। इससे पहले, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XII नियम 6 के तहत प्रावधान था कि किसी भी वाद के किसी भी चरण में, जहां तथ्यों की स्वीकृति दलीलों या अन्यथा के माध्यम से की गई हो, कोई भी पक्षकार न्यायालय से ऐसे निर्णय या आदेश के लिए आवेदन कर सकता है, जिसके आधार पर वह उन स्वीकृतियों के आधार पर हकदार हो, पक्षकारों के बीच किसी अन्य प्रश्न के निर्धारण की प्रतीक्षा किए बिना, और न्यायालय ऐसे आवेदन पर ऐसा आदेश या निर्णय दे सकता है जैसा न्यायालय उचित समझे। भारत के विधि आयोग ने अपनी 54वीं रिपोर्ट में उक्त प्रावधान में संशोधन का सुझाव दिया ताकि न्यायालय न केवल किसी पक्ष के आवेदन पर बल्कि अपनी स्वयं की पहल पर भी निर्णय दे सके। तदनुसार, न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने और न्यायाधीशों को न्याय के दायित्व (एक्स डेबिटो जस्टिटिया) के रूप में इसका उपयोग करने का अधिकार देकर प्रावधान के दायरे को व्यापक बनाने के लिए प्रावधान में संशोधन किया गया था। सि.प्र.सं. के आदेश XII नियम 6 के तहत प्रावधान को यथावत पढ़ने पर, उचित मामले में, वाद का एक पक्ष प्रतिद्वंद्वी पक्ष की स्वीकारोक्तियों के आधार पर विधिक अधिकार के रूप में निर्णय के लिए दबाव डाल सकता है। हालांकि, न्यायालय निर्णय सुनाने के

मामले में हमेशा विवेकाधिकार बरकरार रखता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XII नियम 6 में प्रयुक्त अभिव्यक्तियाँ "तथ्य की स्वीकृति" और "या तो अभिवेदन में या अन्यथा, चाहे मौखिक रूप से या लिखित रूप में" प्रावधान के व्यापक विस्तार को दर्शाती हैं, इस हद तक कि प्रश्नगत स्वीकृतियों को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से भी अनुमानित किया जा सकता है।

6.2 **सुशील भारद्वाज बनाम वेद प्रकाश शास्त्री (2009) 163 DLT 287** के मामले में, इस न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने यह राय व्यक्त की कि आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के प्रयोजनों के लिए, न्यायालय पक्षकारगण द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से भी स्वीकृतियाँ प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"21. सि.प्र.सं. के आदेश 12 नियम 6 का उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से जनहित में बनाया गया है ताकि मुकदमेबाजी में एक या दूसरे पक्ष द्वारा किसी दलील या दस्तावेज़ को स्वीकार करने के बाद मामलों का शीघ्र निपटारा सुनिश्चित किया जा सके जो विवाद की जड़ तक जाता है। ये प्रावधान, एक तरह से, वाद की प्रक्रिया को छोटा कर देते हैं; यदि किसी पक्ष द्वारा इसका लाभ उठाने के लिए आवेदन करने पर किसी पक्ष के मामले के लिए घातक कोई स्वीकारोक्ति पाई जाती है, तो न्यायालय सीधे आदेश देने की कार्यवाही कर सकता है। उत्तम सिंह दुगल के मामले (उपरोक्त) में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रावधान के उद्देश्य को इस प्रकार रेखांकित किया है कि किसी पक्ष को कम से कम उस राहत की सीमा तक शीघ्र निर्णय प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके, जिसके लिए न्यायालय के अनुसार, एक या दूसरा पक्ष हकदार होगा। इस बात पर जोर

दिया गया कि न्यायालय को नियम को अनावश्यक रूप से संकुचित नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका उद्देश्य किसी भी पक्ष को शीघ्र निर्णय प्राप्त करने में सक्षम बनाना है। न्यायालय ने व्यापक रूप से ऐसे स्वीकारोक्तियों की व्याख्या करने की उचित विधि भी बताई। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 में कहा गया है कि:

“15. सि.प्र.सं. के आदेश 20 के नियम 6 में 'अन्यथा' अभिव्यक्ति का उल्लेख किए बिना भी, हम इस मामले में उस नियम के तहत आवेदनों और प्रति शपथपत्र के रूप में मामले में उठाए गए दलीलों के आधार पर एक निष्कर्ष निकाल सकते हैं, जो स्पष्ट रूप से स्वीकारोक्ति को दोहराता है। यदि ऐसा है, तो 'अन्यथा' अभिव्यक्ति की व्याख्या अनावश्यक हो जाती है।”

22. पिछले एक फैसले में, यानी शिखरचंद बनाम श्रीमती बारी बाई, AIR 1974 MP 75 में, उच्च न्यायालय 'अन्यथा' शब्द के संबंध में लगभग उसी निष्कर्ष पर पहुंचा था, यह कहते हुए कि यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि न्यायालय के लिए किसी पक्ष द्वारा न केवल दलीलों में बल्कि दलीलों से इतर दिए गए बयानों के आधार पर निर्णय दे सकता है। न्यायालय ने यह भी महत्वपूर्ण रूप से माना कि इस तरह की स्वीकारोक्तियाँ स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से की जा सकती हैं। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि सि.प्र.सं. के आदेश 12 नियम 6 के तहत एक प्रावधान इतना लचीला है कि यदि परिस्थिति ऐसी हो तो न्यायालय को वाद खारिज करने में सक्षम बनाता है। यह प्रावधान केवल प्रतिवादी के विरुद्ध वादी के दावों को स्वीकार करने वाले आदेश तक सीमित नहीं है; इसमें प्रयुक्त शब्दावली इतनी व्यापक है कि इसमें उन स्थितियों को भी शामिल किया जा सकता है जहां अभिवेदनों में या 'अन्यथा' स्वीकारोक्तियों के परिणामस्वरूप वाद को खारिज किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप एक डिक्री तैयार की जाएगी। अतः, यहाँ मुख्य

प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादीगण द्वारा जिन दो दस्तावेजों पर भरसा किया गया है, अर्थात् प्रदर्श डी-1 और डी-2, वे स्पष्ट और असंदिग्ध स्वीकारोक्तियाँ हैं जो न्यायालय को वाद को खारिज करने के लिए राजी कर सकें।

6.3 करम कपाही बनाम लाल चंद, 168 (2010) DLT 501 SC के मामले

में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

“46. आदेश 12 नियम 6 के पीछे के सिद्धांत वादी को शीघ्र निर्णय का अधिकार देना है। इस नियम के तहत कोई भी पक्ष प्रतिद्वंद्वी दावों के उस हिस्से से छुटकारा पा सकता है जिसके बारे में 'कोई विवाद नहीं है' [देखें लॉर्ड जेसेल, मास्टर ऑफ रोल्स, का थोर्प बनाम होल्ड्सवर्थ में कथन (1876) 3 चांसरी डिवीजन 637 पृष्ठ 640]। इस संदर्भ में यह उल्लेख किया जा सकता है कि आदेश 12 नियम 6 को 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया था।

47. संशोधन से पहले नियम इस प्रकार था:-“6. स्वीकारोक्ति पर निर्णय:-किसी भी वाद के किसी भी चरण में, जहां तथ्यों की स्वीकृति, चाहे वह अभिवेदनों के माध्यम से हो या अन्यथा, न्यायालय से ऐसे निर्णय या आदेश के लिए आवेदन कर सकती है, जिसके लिए वह ऐसी स्वीकृति के आधार पर हकदार हो, पक्षकारगण के बीच किसी अन्य प्रश्न के निर्धारण की प्रतीक्षा किए बिना, और न्यायालय ऐसे आवेदन पर ऐसा आदेश दे सकता है या ऐसा निर्णय दे सकता है, जैसा न्यायालय उचित समझे।”

48. 54वीं विधि आयोग की रिपोर्ट में एक संशोधन का सुझाव दिया गया था ताकि न्यायालय न केवल किसी पक्ष के आवेदन पर बल्कि अपनी स्वयं की पहल पर भी निर्णय दे सके। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संशोधन न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए लाया गया था और इन प्रावधानों को न्यायाधीशों

को एक्स डेबिटो जस्टिटिया, एक लैटिन शब्द, जिसका अर्थ न्याय का ऋण है, का उपयोग करने का अधिकार देकर व्यापक व्यापकता प्रदान की गई थी। हमारी राय में संशोधन का जोर इस बात पर है कि एक उपयुक्त मामले में, एक पक्ष, दूसरे पक्ष की स्वीकृति पर, विधिक अधिकार के रूप में निर्णय के लिए दबाव डाल सकता है। हालाँकि, निर्णय सुनाने के मामले में न्यायालय हमेशा अपना विवेक बरकरार रखता है।

49. यदि आदेश 12 नियम 1 के प्रावधान की तुलना आदेश 12 नियम 6 से की जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आदेश 12 नियम 6 का प्रावधान अधिक व्यापक है क्योंकि आदेश 12 नियम 1 का प्रावधान 'लिखित रूप में दलील या अन्य माध्यम से' स्वीकारोक्ति तक सीमित है, जबकि आदेश 12 नियम 6 में प्रयुक्त शब्दों के मद्देनजर 'या अन्य माध्यम से' अभिव्यक्ति कहीं अधिक व्यापक है, अर्थात्: 'तथ्य की स्वीकृति.....या तो दलील में या अन्यथा, चाहे मौखिक रूप से या लिखित रूप में'।

50. इस प्रावधान की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने माना कि इस नियम के तहत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से स्वीकारोक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है [देखें चरणजीत लाल मेहरा और अन्य बनाम कमल सरोज महाजन (श्रीमती) और अन्य, (2005) 11 SCC 279 पृष्ठ 285 (पैरा 8)]। पूछताछ के जवाब में स्वीकारोक्तियाँ भी इस नियम के अंतर्गत आती हैं [देखें मुल्लास की संहिता पर टिप्पणी, 16वां संस्करण, खंड II, पृष्ठ 2177]।

51. उत्तम सिंह दुग्गल एंड कंपनी लिमिटेड बनाम यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया और अन्य (2000) 7 SCC 120 के मामले में, इस न्यायालय ने इस प्रावधान की व्याख्या करते हुए कहा कि न्यायालय को इसके प्रयोग को अनावश्यक रूप से संकुचित नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका उद्देश्य किसी पक्ष को शीघ्र निर्णय प्राप्त करने में सक्षम बनाना है।

6.4 **राष्ट्रीय वस्त्र निगम बनाम अश्वल वडेरा, 167 (2010) DLT 602** के मामले में, इस न्यायालय ने पुनः निम्नलिखित दोहरायाः"

"17. यह स्थापित कानून है कि स्वीकारोक्तियों को स्पष्ट रूप से दलीलों में दर्ज करना आवश्यक नहीं है। रचनात्मक स्वीकारोक्तियों के आधार पर भी न्यायालय वादी के पक्ष में डिक्री पारित कर सकता है। आदेश XII नियम 6 सि.प्र.सं. के प्रावधानों को लागू करने के लिए, जैसा कि उक्त प्रावधान में "अन्यथा" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है, दलीलों से इतर स्वीकृतियों पर भी विचार किया जा सकता है। [शिखरचंद बनाम एमएसटी बारी बाई, AIR 1974 एमपी 75; के. किशोर बनाम इलाहाबाद बैंक, 1997 (41) DRJ 698; उत्तम सिंह दुग्गल बनाम यूबीआई, (2000) 7 SCC 120; राजीव श्रीवास्तव बनाम संजीव तुली, 119 (2005) DLT 202; रामा घी बनाम यू.पी. राज्य हथकरघा निगम, 91 (2001) DLT 386 और आर.एन. सचदेवा बनाम आर.एल. महाजन चैरिटेबल ट्रस्ट, 1997 (41) DRJ 698]देखें। इस प्रकार की स्वीकारोक्तियाँ वाद की कार्यवाही शुरू होने से पहले पक्षकारगण के बीच लिखित या निष्पादित दस्तावेजों में निहित हो सकती हैं या न्यायालय में दर्ज पक्षकारगण के बयानों से भी प्राप्त हो सकती हैं, जिनमें आदेश X नियम 1 सि.प्र.सं. के तहत दर्ज बयान भी शामिल हैं। स्वीकारोक्ति को अभिवेदनों और दस्तावेजों में किए गए अस्पष्ट और अनिश्चित खंडनों से भी प्राप्त किया जा सकता है, जो देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि जानबूझकर न्यायालय को गुमराह करने के लिए किए गए हैं, या अभिवेदनों और दस्तावेजों में किए गए विशिष्ट कथनों का खंडन न किए जाने से भी प्राप्त किया जा सकता है।

18. न्यायिक प्रणाली की यह एक अभिशाप है कि मामले को लंबा खींचने और विलंबित करने के उद्देश्य से, एक अपराधी अक्सर तरह-तरह के झूठे और विधिक रूप से निराधार तर्क

प्रस्तुत करता है। ऐसे मुकदमेबाजों (याचिकाकर्ताओं) को न्यायिक प्रक्रिया को हाईजैक करने और न्याय के उद्देश्य को विफल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जहां न्यायालय को यह स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाता है कि बचाव पक्ष का एकमात्र उद्देश्य वाद को लंबा खींचना है, जिससे अपराधी को लाभ हो और पीड़ित पक्ष को नुकसान हो, तो न्यायालय का यह परम कर्तव्य बन जाता है कि वह पीड़ित को व्यर्थ और खर्चीले वाद की झंझट से बचाए। इसके लिए न्यायालय को विभिन्न कानूनों में अनेक प्रावधानों द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जिनमें सबसे शक्तिशाली प्रावधान आदेश XII नियम 6 के साथ आदेश VIII नियम 3 और 4 सि.प्र.सं. के प्रावधान हैं। अफसोस की बात है कि उक्त प्रावधानों का न्यायालयों द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के लाभ के लिए उपयोग किए जाने के बावजूद, अभी तक इनका अधिकतम उपयोग नहीं हो पाया है। अतः इस न्यायालय के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने, विधिक विलंब को कम करने और पीड़ित पक्ष को लंबे समय तक चलने वाले मुकदमेबाजी के कष्टों से बचाने के लिए उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करे, जो अक्सर उसके जीवनकाल से भी अधिक लंबा खिंच जाता है और अंततः उसके बाद उसके परिवार वालों को भुगतना पड़ता है।”

(जोर दिया गया)

7. वर्तमान मामले पर वापस आते हुए, यह स्वीकार किया जाता है कि अपीलार्थी का संबंधित संपत्ति पर न तो मालिक के रूप में, न ही किरायेदार के रूप में और न ही प्रतिफल के लिए लाइसेंसधारी के रूप में कब्जा है। यह भी माना जाता है कि विषयगत संपत्ति का स्वामित्व प्रत्यर्थी के पास है। इसके अलावा, यह भी स्वीकार किया जाता है कि अपीलार्थी को प्रत्यर्थी द्वारा ही संबंधित संपत्ति में शामिल किया गया था।

8. उक्त संपत्ति पर अपने कब्जे को उचित ठहराने के लिए, अपीलार्थी ने दावा किया कि वह उक्त संपत्ति में केवल प्रत्यर्थी के अनुरोध पर दाखिल हुई थी, जिसने उससे शादी करने का वादा किया था और उसका यौन शोषण जारी रखा था। यह बात तो स्वीकार करनी होगी कि दोनों पक्ष एक-दूसरे की वैवाहिक स्थिति से अवगत थे और इस बात से भी पूरी तरह अवगत थे कि दोनों के अपने-अपने जीवनसाथी और बच्चे हैं। इस जानकारी के बावजूद, दोनों पक्षकारगण ने आपसी सहमति से यौन संबंध बनाए। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी से शादी की थी। इसलिए, अपीलार्थी अपने वैवाहिक अधिकार का दावा करते हुए विषयगत संपत्ति पर अपना कब्जा बनाए रखने पर जोर नहीं दे सकती।

9. इसके बाद समझौता ज्ञापन (एमओयू) से संबंधित तर्क आता है, जिसके अनुसार प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के पक्ष में उपहार विलेख के माध्यम से विषय संपत्ति का आधा हिस्सा हस्तांतरित करने का आश्वासन दिया था, जिसे प्रत्यर्थी द्वारा निष्पादित किया जाना था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उक्त समझौता ज्ञापन न केवल बिना स्टाम्प और बिना पंजीकृत दस्तावेज था, बल्कि उस पर कोई अमल भी नहीं किया गया था। अपीलार्थी ने स्वयं उस समझौता ज्ञापन की शर्तों का पालन नहीं किया और समझौता ज्ञापन के निष्पादन के बाद प्रत्यर्थी के खिलाफ एक और आपराधिक मामला दर्ज कराया और बलात्कार के मामले को रद्द करने के लिए प्रत्यर्थी के साथ उपस्थित नहीं हुई।

10. जैसा कि भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत अपराध के लिए थाना अशोक नगर की प्राथमिकी संख्या 19/2023 को रद्द करने के लिए रि.या. (आप.) 771/2014 (W.P. (Crl) 771/2014) में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 21.05.2015 के निर्णय से परिलक्षित होता है, अपीलार्थी ने समझौता ज्ञापन की शर्तों के विपरीत अपने अधिवक्ता के माध्यम से रद्दीकरण का विरोध किया और अंततः विस्तृत चर्चा के माध्यम से योग्यता के आधार पर प्रत्यर्थी अपनी याचिका में सफल रहा। अभिलेख पर मौजूद सामग्री का बारीकी से अध्ययन करने के बाद, इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त निर्णय के पैरा 36 में टिप्पणी की कि आपराधिक न्याय प्रणाली का दुरुपयोग लिव-इन रिलेशनशिप के साथी के व्यक्तिगत प्रतिशोध के लिए रोकने के लिए विचाराधीन प्राथमिकी को रद्द किया जाना चाहिए। इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए यह अंतिम हो चुका है।

11. चूंकि अपीलार्थी ने स्वयं 07.10.2013 के समझौता ज्ञापन की शर्तों का उल्लंघन किया है, इसलिए अब उसे यह दावा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि चूंकि प्रत्यर्थी ने उसे विषयगत संपत्ति का आधा हिस्सा उपहार में नहीं दिया था, इसलिए उसे यह अपने पास रखने का अधिकार है। इसके अलावा, क्योंकि अपीलार्थी ने उक्त समझौता ज्ञापन को लागू कराने (यदि संभव हो तो) के लिए कोई स्वतंत्र विधिक कार्यवाही शुरू नहीं की है।

12. इसका नतीजा यह है कि अपीलार्थी को संबंधित संपत्ति का केवल एक अनुमेय उपयोगकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया था और वह अभी भी वही है, और संपत्ति का मालिक चाहता है कि वह संपत्ति खाली कर दे। इस पहलू पर, ऊपर वर्णित प्रतिद्वंद्वी दलीलें स्पष्ट रूप से उसके असंदिग्ध और निर्विवाद स्वीकारोक्ति को दर्शाती हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपने लिखित बयान में, अपीलार्थी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रत्यर्थी द्वारा उसे विषयगत संपत्ति में रखा गया था और उसे बुनियादी सुविधाएं भी प्रदान की गई थीं ताकि वह वहां रह सके। यहां तक कि उस समझौता ज्ञापन में भी, जिस पर अपीलार्थी ने इतना अधिक भरोसा किया है, यह कहा गया है कि विचाराधीन संपत्ति प्रत्यर्थी के स्वामित्व में है और उसे प्रत्यर्थी द्वारा ही विचाराधीन संपत्ति में रखा गया था।

13. इसका एक और पहलू भी है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उक्त समझौता ज्ञापन के अनुसार, प्रत्यर्थी ने माननीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के दिनांक 05.12.2013 के आदेश द्वारा अपना वाद वापस ले लिया था, लेकिन बाद में, उसने इस आधार पर उस वाद को फिर से शुरू करने के लिए एक आवेदन दायर किया कि अपीलार्थी ने उक्त समझौता ज्ञापन की शर्तों पर कभी कार्रवाई नहीं की। प्रत्यर्थी के उक्त आवेदन को विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.04.2018 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया था, जिसमें विशेष रूप से यह कहा गया था कि चूंकि पक्षकारगण के बीच हुए

समझौते पर अमल नहीं किया गया था, इसलिए वाद को फिर से शुरू किया जा रहा है। दिनांक 25.04.2018 के उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए यह अंतिम हो चुका है। और इसका अर्थ यह होगा कि अपीलार्थी ने यह स्वीकार कर लिया है कि उक्त समझौता ज्ञापन पर अमल न होने के कारण उसे रद्द कर दिया गया है। इसलिए, वह उस समझौता ज्ञापन के तहत संरक्षण का दावा नहीं कर सकती।

14. ऐसी परिस्थितियों में, इस तरह की स्पष्ट और असंदिग्ध स्वीकारोक्तियों को नजरअंदाज करना और पक्षकारगण को गैर-मुद्दों पर लंबी मुकदमेबाजी की जटिल प्रक्रिया से गुजरने के लिए मजबूर करना न्याय का पूर्ण उपहास होगा।

15. संक्षेप में: अपीलार्थी साफ़ शब्दों में मानती है कि विषयगत संपत्ति प्रत्यर्थी की है और उसे प्रत्यर्थी द्वारा केवल एक अनुमति प्राप्त उपयोगकर्ता के रूप में ही उस संपत्ति में रहने दिया गया था; अपीलार्थी ने कभी भी प्रत्यर्थी से शादी नहीं की; और अपीलार्थी द्वारा जिस समझौता ज्ञापन पर भरोसा किया गया था, उस पर अमल नहीं किया गया और बल्कि अपीलार्थी ने ही उसकी शर्तों का उल्लंघन किया। इसलिए, मुझे आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई त्रुटि नहीं दिखी, और उसे बरकरार रखा जाता है। वर्तमान अपील प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग है, इसलिए लंबित आवेदनों सहित इसे खारिज किया जाता है और अपीलार्थी को प्रत्यर्थी को इस अपील के मुकदमेबाजी खर्चों के लिए

50,000 रुपये का भुगतान करना होगा, जिसका अनुमान कम से कम लगाया गया है।

गिरीश कठपालिया
(न्यायाधीश)

21 फरवरी, 2025/आरवाई

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।